जैन शिक्षा दर्शन में गुरु की अर्हताएँ

विजय कुमार

जैन दर्शन ने हमारे देश की शिक्षा के स्वरूप-निर्धारण में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उस योगदान के पीछे हमारे जैन आचार्यों और गुरुओं की अहम भूमिका रही है। प्राचीनकाल में गुरु को सामाजिक विकास का सूत्रधार माना जाता था। समाज की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं और आदर्शों को व्यावहारिक रूप में परिणत करने का कर्तव्य गुरु को ही निभाना पड़ता था।

भारत की इस पावन धरती पर महान् ज्ञानी, ध्यानी तथा ऋषि आदि उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने ज्ञान की दिव्य ज्योति से व्यक्ति और समाज में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने का प्रयास किया। इसी कारण जब भी अध्यापक अथवा अध्यापन के विषय में चर्चा होती है तो किसी न किसी रूप में हम अपने उन प्राचीन गुरुओं को आदर्श रूप में स्वीकार करते हैं। चाहे वह अध्यापन कार्य का विषय हो या चरित्र अथवा ज्ञान के आविष्कार का विषय हो सभी क्षेत्रों में हमें गुरु की आवश्यकता पड़ती ही है। अतः जीवन को सार्थक बनाने में गुरु का सर्वोच्च स्थान है।

'गुरु' का शाब्दिक अर्थ

'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति 'गृ' धातु में 'कु' और 'उत्व' प्रत्यय लगने से होती है। 'गृणाति उपदिशित धर्मं गिरति अज्ञानं वा गुरुः'। अर्थात् जो अज्ञान को नष्ट कर ज्ञान का प्रकाश प्रदान करता है, अन्तर्मन में धर्म की ज्योति प्रज्ज्वलित करता है, धर्म का उपदेश देता है, वही गुरु है। व्याकरण के अनुसार 'गृणातीति गुरुः', जो 'गृ' निगरणे धातु से निष्पन्न है और जिसका अर्थ होता है—'जो भीतर से कुछ निकालकर दे वह गुरु है।'

इस प्रकार 'गुरु' शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ से 'गुरु' एक धर्मोपदेशक तथा पथप्रदर्शक दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु आजकल सामान्यतया 'गुरु' शब्द का अर्थ शिक्षक से लिया जाता है जो हमें स्कूल या कालेजों में किसी विषय का विधिवत् ज्ञान कराता है। जैन ग्रन्थों में ऐसे गुरु के लिए आचार्य, बुद्ध, पूज्य, धर्माचार्य, उपाध्याय आदि शब्दों के भी प्रयोग देखने को मिलते हैं। आचार्य को परिभाषित करते हुए अभयदेव सूरि ने कहा है जो सूत्र और अर्थ दोनों के ज्ञाता हों, उत्कृष्ट कोटि के लक्षणों से युक्त हों, संघ के लिए मेढ़ि के समान हों, जो अपने गण-गच्छ अथवा संघ को समस्त प्रकार के संतापों से पूर्णतः विमुक्त रखने में सक्षम हों, तथा जो अपने शिष्यों को आगमों के गूढ़ार्थ सहित वाचना देते हों, उन्हें आचार्य कहते हैं।[1]

---

१. भगवतीसूत्र १।१।१ (अभयदेववृत्ति)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु के लक्षण

विद्यार्थी के लिए सद्गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। सद्गुरु के अभाव में विद्यार्थी कितनी ही कुशाग्र बुद्धि का हो, वह उसी प्रकार प्रकाशित नहीं हो सकता जिस प्रकार बिना सूर्य के चन्द्रमा। किन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि सद्गुरु की संगति कैसे की जाए, उसकी क्या पहचान है ? उसके लक्षण क्या हैं ? जिसे देखकर यह समझा जाए कि यह सद्गुरु है या असद्गुरु। आदिपुराण में सद्गुरु के निम्नलिखित लक्षण बताये गये हैं—

१. सदाचारी, २ स्थिरबुद्धि, ३. जितेन्द्रियता, ४. अन्तरंग और बहिरंग सौम्यता, ५. व्याख्यान शैली की प्रवीणता, ६ सुबोध व्याख्याशैली, ७. प्रत्युत्पन्न मतित्व, ८. तार्किकता, ९. दयालुता, १० विषयों का पाण्डित्य, ११. शिष्य के अभिप्राय को अवगत करने की क्षमता, १२. अध्ययनशीलता, १३. विद्वत्ता, १४ वाङ्मय के प्रतिपादन की क्षमता, १५. गम्भीरता, १६. स्नेहशीलता, १७. उदारता, १८. सत्यवादिता, १९. सत्कुलोत्पन्नता, २०. अप्रमत्तता, २१. परहित साधन की तत्परता आदि।[१]

गुरु की अर्हताएँ

जीवन के निर्माण में गुरु एक महान् विभूति के रूप में प्रस्तुत होता है। परन्तु उस महान् विभूति का योग्य होना भी आवश्यक है। क्योंकि यदि गुरु ही अयोग्य होगा तो शिष्य योग्य कैसे बन सकता है। अतः व्यवहार-सूत्र में आचार्य पद को प्राप्त करने की योग्यताओं के विषय में कहा गया है कि जो कम से कम पाँच वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला, श्रमणाचार में कुशल, प्रवचन में प्रवीण, प्रज्ञाबुद्धि में निष्णात, आहारादि के उपग्रह में कुशल, अखण्डाचारी, सबल दोषों से रहित, भिन्नता रहित आचार का पालन करने वाले, निःकषाय चरित्र वाले, अनेक सूत्रों और आगमों आदि में पारंगत श्रमण आचार्य अथवा उपाध्याय पद को प्राप्त करने के योग्य हैं।[२]

आचार्य के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि आचार्य को संग्रह-अनुग्रह में कुशल, सूत्र के अर्थ में विशारद, कीर्ति से प्रसिद्धि को प्राप्त तथा चरित्र में तत्पर होना चाहिए।[३] साथ ही ग्राह्य और आदेय वचन बोलने वाला, गम्भीर, दुर्धर्ष, शूर, धर्म की प्रभावना करने वाला, क्षमागुण में पृथ्वी के समान, सौम्यगुण में चन्द्रमा के समान और निर्मलता में समुद्र के समान होना चाहिए।[४]

आचार्य के छत्तीस गुण

आचारत्व आदि आठ गुण, अनशनादि बारह तप, आचेलक्यादि दशकल्प और सामा-

---

१. आदिपुराण १.१२६-१३३, पृ० १९

२. व्यवहारसूत्र ३.५

३. संगहणुग्गहकुसलो सुत्तत्थविसारओ पहियकित्तो।
किरिआचरणसुजुतो गाहुयआदेज्जवयवो य ॥ —मूलाचार १५८, पृ० १३३

४. गंभीरो दुद्धरिसो सूरो धम्मप्पहावणासीलो।
खिदिससिसायरसरसो कमेण तं सो दु संपत्तो ॥ —मूलाचार १५९, पृ० १३३-१३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिकादि छः आवश्यक ये छत्तीस गुण आचार्य के कहे गये हैं।[१] इन छत्तीस गुणों का विवेचन निम्नलिखित है—

आचारत्व आदि आठ गुण—

आचारवान्—जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार आदि पाँच आचारों का स्वयं पालन करे और शिष्यों से पालन करवावे, वही गुरु है।

आधारवान्—जो श्रुत ज्ञान का भली भाँति ज्ञाता हो।

व्यवहारवान्—जो प्रायश्चित्तशास्त्र का ज्ञाता हो।

प्रकर्तृत्व—आचार्य में इतनी कर्तृत्वशक्ति होनी चाहिए कि संकट का समय उपस्थित होने पर संघ की पूर्ण रक्षा कर सके।

अपायोपायदर्शी—अर्थात् गुण-दोष का समुचित निर्णय करने वाला हो।

अवपीड़क—यदि शिष्य अपने दोषों को न कहे तो उसे डाँट-फटकारकर दोष कहलवाने में समर्थ हो।

अपरिस्रावी—जो किसी भी शिष्य द्वारा कहे गये दोषों को बाहर प्रकट नहीं करता हो।

सुखावह—समाधिमरण स्वीकार करने वाले साधु को परीषहों से पीड़ित होने पर उसकी बाधाओं को दूर करते हुए उसका सम्यक् प्रकार से समाधिमरण कराने में सक्षम हो।

अतः इन आठ गुणों से युक्त व्यक्ति ही गुरु के योग्य माना जाता है।

बारहतप—

अनशन—आहार का त्याग करना अनशन तप है।

ऊनोदरी—भूख से कम खाना ऊनोदरी कहलाता है।

भिक्षाचारी—नियमपूर्वक, पवित्र उद्देश्य से और शास्त्र सम्मत विधि-विधान के साथ भिक्षा ग्रहण करना।

रस-परित्याग तप—स्वादिष्ट भोजन घी, दही, दूध आदि रसमय वस्तुओं का त्याग करना।

कायक्लेश तप—शरीर को कष्ट देना कायक्लेश तप है। इसके दो प्रकार होते हैं—(१) प्राकृतिक रूप से स्वयं आना-जैसे गर्मी में लू के थपेड़े। (२) उदीरणा करके लेना, जैसे—केशलुंचन।

प्रतिसंलीनता तप—बहिर्मुखी आत्मा को अन्तर्मुखी बनाने का प्रयत्न ही प्रतिसंलीनता तप कहलाता है।

प्रायश्चित्त तप—दोष अथवा अनुचित कार्य की विशुद्धि के लिए जो क्रिया (तपस्या) अपनायी जाती है वह प्रायश्चित्त तप है।

---

१. आयारवमादीया अट्ठगुणा दस विधो च ठिदिकप्पो।
बारस तव छावासय छतीसगुणा मुणेयव्वा॥ —भगवती आराधना, भाग-१, ५२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनय तप—आभ्यन्तर तप को ही विनय तप कहते हैं। इससे मन, वचन और काय तीनों में कोमलता और मृदुता का वास होता है।

वैयावृत्य तप—धर्म की साधना तथा आत्मविकास में परस्पर एक दूसरे का सहयोग करना वैयावृत्य तप है।

स्वाध्याय तप—मर्यादापूर्वक शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय तप कहलाता है।

ध्यान तप—मन की एकाग्रता का नाम ध्यान तप है।

व्युत्सर्ग तप—धर्म और आत्मसाधना के लिए अपने आपको उत्सर्ग करने की विधि हो व्युत्सर्ग तप कहलाता है।

उपर्युक्त बारह प्रकार के तपों का पालन करना आचार्य या गुरु के लिए आवश्यक बतलाया गया है।

दस कल्प

आचेलक्य—समस्त परिग्रह के त्याग को आचेलक्य कहते हैं।

औद्देशिक—श्रमणों के उद्देश्य से बनाये गये भोजनादि को औद्देशिक कहते हैं।

शय्यागृह का त्याग—शय्या और गृह दोनों का दूसरों के लिए त्याग करना।

राजपिण्ड—राजा का पिण्ड अर्थात् जिस पिण्ड का वह स्वामी है उसका ग्रहण न करना राजपिण्ड कहलाता है।

कृतिकर्म—चारित्र में स्थित साधु के द्वारा भी महान् गुरुओं की विनय-सेवा करना कृतिकर्म है।

व्रतारोपणत्व —जीवों के भेद-प्रभेद को जाननेवाले को ही नियम से व्रत देना चाहिए।

व्रत ज्येष्ठता —चिरकाल दीक्षित और पाँच महाव्रतों से युक्त आर्यिका से तत्काल दीक्षित पुरुष भी ज्येष्ठ होता है।

प्रतिक्रमण—अचेलता आदि कल्प में स्थित साधु को यदि अतिचार लगता है तो उस अतिचार का परिहार करना प्रतिक्रमण है।

मास—छः ऋतुओं में से एक-एक महीना ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थितिकल्प है।

पर्युषणा—वर्षाकाल के चार मासों में भ्रमण त्यागकर एक ही स्थान पर निवास करना पर्युषणा है।

इस प्रकार इन दस प्रकार के कल्पों का धारक एवं शिष्यों से इनका पालन करवाने में सक्षम व्यक्ति ही आचार्य या गुरु है।

छः आवश्यक

(१) **सामायिक**—राग-द्वेष से रहित समभाव को सामायिक कहते हैं।

(२) **चतुर्विंशतिस्तव**—ऋषभ आदि चौबीस तीर्थङ्करों के जिनवरत्व आदि गुणों के ज्ञान और श्रद्धापूर्वक चौबीस स्तवनों को पढ़ना चतुर्विंशतिस्तव कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) **वन्दना**—रत्नत्रयसे सहित आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक और स्थविर मुनियों के गुण-अतिशय को जानकर श्रद्धापूर्वक अभ्युत्थान और प्रयोग के भेद से दो प्रकार की विनय में प्रवृत्ति को वन्दना कहते हैं।

(४) **प्रतिक्रमण**—प्रमादवश शुभयोग से च्युत होकर अशुभ योग को प्राप्त करने के बाद पुनः शुभयोग को प्राप्त करना प्रतिक्रमण है।

(५) **कायोत्सर्ग**—ध्यान के लिए शरीर की निश्चलता को कायोत्सर्ग कहते हैं।

(६) **प्रत्याख्यान**—आगामी काल में मैं यह काम नहीं करूँगा, इस प्रकार के संकल्प को प्रत्याख्यान कहते हैं।

अतः उपर्युक्त छत्तीस प्रकार के गुणों से युक्त आचार्य ही सच्चे गुरु माने गये हैं।

इसी प्रकार महामुनि उपाध्याय अमरमुनि ने सामायिक सूत्र में आचार्य के निम्नलिखित छत्तीस गुण बताये हैं—"जो पाँच इन्द्रियों के वैषयिक चांचल्य को रोकने वाला, ब्रह्मचर्य व्रत की नवविध गुप्तियों को धारण करने वाला, क्रोधादि चार कषायों से मुक्त, अहिंसादि पाँच महाव्रतों से युक्त, पाँच आचार का पालन करने में समर्थ, पाँच समिति और तीन गुप्तियों को धारण करने वाला श्रेष्ठ साधु ही गुरु है।"[1]

गुरु के प्रकार :—

जैनागमों में आचार्य के कई प्रकार बताये गये हैं। राजप्रश्नीयसूत्र[2] में तीन प्रकार के आचार्यों के वर्णन मिलते हैं—

१. कलाचार्य, २ शिल्पाचार्य और ३. धर्माचार्य।

जो बहत्तर कलाओं की शिक्षा देते हैं, वे कलाचार्य, जो विज्ञान आदि का ज्ञान कराते हैं, वे शिल्पाचार्य तथा जो धर्म का प्रतिबोध देने वाले हैं, वे धर्माचार्य कहलाते हैं। परन्तु स्थानांग सूत्र में ज्ञान एवं कार्य की अपेक्षा से आचार्य चार[3] प्रकार के बताये गये हैं—

(१) **उद्देशनाचार्य**—जो आचार्य शिष्यों को पढ़ने का आदेश देते हैं, किन्तु वाचना देने वाले नहीं होते, वे उद्देशनाचार्य कहलाते हैं।

(२) **वाचनाचार्य**—जो आचार्य वाचना देने वाले होते हैं किन्तु अध्ययन-अध्यापन का आदेश देने वाले नहीं होते हैं, वे वाचनाचार्य कहलाते हैं।

(३) **उद्देशनाचार्य-वाचनाचार्य**—जो आचार्य आदेश भी देते हैं और वाचना भी देते हैं, वे उद्देशनाचार्य-वाचनाचार्य हैं।

(४) **न उद्देशनाचार्य न वाचनाचार्य**—जो आचार्य न आदेश ही देते हैं और न वाचना ही देते हैं, किन्तु धर्म का प्रतिबोध देने वाले होते हैं।

---

१. सामायिकसूत्र, ३/१/२

२. राजप्रश्नीयसूत्र—१५६/३४२

३. स्थानांगसूत्र—४/३/४२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः करण्डक की उपमा देकर आचार्य के चार[१] प्रकार बताये गये हैं—

(१) **चाण्डाल अथवा चर्मकार के करण्डक तुल्य**—जो आचार्य षट्काय प्रज्ञापक का धारक एवं विशिष्ट क्रियाहीन है वह उसी प्रकार निकृष्ट है जिस प्रकार चर्म आदि रखे रहने से चाण्डाल का करण्डक।

(२) **वेश्या के करण्डक तुल्य**—जो आचार्य ज्ञान अधिक न होने पर भी वाग् आडम्बर से व्यक्तियों को प्रभावित कर लेता है वह वेश्या के करण्डक के समान है।

(३) **गृहपति के करण्डक तुल्य**—जो आचार्य स्वसमय, परसमय के जानकार हों तथा चरित्र सम्पन्न हों, वे गृहपति के करण्डक के तुल्य शोभित होते हैं।

(४) **राजा के करण्डक तुल्य**—आगम में वर्णित आचार्य के समस्त गुणों से सम्पन्न आचार्य उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ है जिस प्रकार बहुमूल्य रत्नों से भरा राजा का करण्डक श्रेष्ठ है।

गुरु का महत्व :—

गुरु का स्थान हमारे समाज में अतीव पूजनीय है। दशवैकालिकसूत्र में आचार्य की गरिमा पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

"जिस प्रकार प्रातःकाल देदीप्यमान सूर्य समस्त भरतखण्ड को अपने किरण समूह से प्रकाशित करता है, ठीक उसी प्रकार आचार्य भी श्रुत, शील और बुद्धि से युक्त हो उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों के स्वरूप को यथावत् प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार स्वर्ग में देव सभा के मध्य इन्द्र शोभता है, उसी प्रकार साधु-सभा के मध्य आचार्य शोभता है।"[२]

पुनः चन्द्रमा की उपमा देते हुए कहा गया है--

"जिस प्रकार कौमुदी के योग से युक्त तथा नक्षत्र और तारों के समूह से घिरा हुआ चन्द्रमा, बादलों से रहित अतीव स्वच्छ आकाश में शोभित होता है, ठीक उसी प्रकार आचार्य भी साधु-समूह में सम्यक्तया शोभित होते हैं।"[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन वाङ्मय में आचार्य की अर्हताएँ अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी हैं। सचमुच जिसकी ज्ञानदृष्टि सूर्य के किरणों की भाँति तीक्ष्ण हो तथा जो चन्द्रमा की तरह लोगों को शीतलता प्रदान करे वह कितना महान् है। जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाशित करता है उसकी महानता को शब्दों में व्यक्त करना मानों सूर्य को दीपक दिखाना है।

---

१. स्थानांगसूत्र ४/४/५४१

२. जहा निसंते तवणच्चिमाली पभासई केवल भारहं तु।
एवायरिओ सुअसीलबुद्धिए, विरायई सुरमज्झेव इंदो॥ —दशवैकालिक—१४/२/९

३. जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो, नक्खत्ततारागण परिवुड़प्पा।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के, एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे॥ —वही १५/२/९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में गुरु की महत्ता को जाति, कुल या वर्ण से नहीं आँका गया है बल्कि उसकी महत्ता गुणों के आधार पर निर्धारित की गयी है, उदाहरणार्थ उत्तराध्ययनसूत्र में चाण्डाल को भी शिक्षा पाकर महर्षि बनना बताया गया है।[१]

शोधछात्र
दर्शन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

१. सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो नाम, आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥ —उत्तराध्ययन १२/१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org